Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों की उपयोगिता

डॉ० संजीव कुमार
प्रवक्ता (हिन्दी)
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार

सारांश – अथर्ववेदीय शिक्षा में नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास, प्रजातान्त्रिक मूल्य एवं सामाजिक उन्नति के बहुविध संकेतों का पूर्ण ही प्रदर्शन किया जा चुका है। राष्ट्रीय एकता के लिए–ब्रहचर्येण तपसा राज राष्ट्र विरक्षति इत्यादि मन्त्र द्रष्टव्य है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। अथर्ववेदीय शिक्षा ही मानवीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकती है। अथर्ववेदीय शिक्षा–बेरोजगारी, व्यवसाय, जनसंख्या, व्याधि, अनैतिकता, इत्यादि सभी समस्याओं का समाधान करके मानव को सुख शांति एवं समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर आसीन कर सकती है।

प्रमुख शब्द – अथर्ववेदीय, शिक्षा, नैतिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, शिक्षा–बेरोजगारी, व्यवसाय, जनसंख्या, व्याधि, अनैतिकता।

व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, राष्ट्रीय प्रगति तथा सांस्कृतिक उत्थान के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा व्यक्तित्व विकास, संस्कृति संरक्षण तथा राष्ट्रीय प्रगति में अमूल्य योगदान प्रदान करती है। शिक्षा द्वारा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। शिक्षा व समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करतें हैं। शिक्षा व समाज के संबंध को स्पष्ट करते हुये ओटावे (Ottaway) लिखते हैं – 'किसी भी समाज में दी जाने वाली शिक्षा समय–समय पर उसी प्रकार बदलती है, जिस प्रकार समाज बदलता है।'[1]

वर्तमान युग को विचारकों ने परिवर्तन के युग के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा, संस्कृति, संसाधन, जीवन शैली, आचार, आहार–विहार इत्यादि सब कुछ विज्ञान के प्रभाव में तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन के काल चक्र में शिक्षा के सिद्धान्त भी परिवर्तित हुये हैं। विभिन्न वादों (विचारधाराओं) के साथ अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों की तुलना की जा रही है।

आदर्शवादी शिक्षा सिद्धान्त एवं अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त

हैण्डरसन के अनुसार–आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है।

इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक मूल्य, मनुष्य के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य इन मूल्यों को अपने सीमित मन से प्राप्त करता है। वे यह मानते हैं कि व्यक्ति और संसार दोनों बुद्धि की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे कहते हैं, भौतिक संसार की व्याख्या मन से ही की जा सकती है।

आदर्शवाद आध्यात्मिकता तथा मन तक ही सीमित दिखाई देता है, जबकि अथर्ववेदीय सिद्धान्त व्यापक रूप में अध्यात्मिकता, भौतिकता तथा उच्च चारित्र्य अथवा आदर्श जीवन की प्राप्ति का आग्रह करते हैं।

आदर्शवाद शैक्षिक उद्देश्यों के रूप में आत्मानुभूति तथा आदर्श चरित्र के निर्माण पर बल देता है।

आदर्शवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्न गुणों अथवा विषयों का होना आवश्यक है–

1. जीवन के सर्वोच्च आदर्श।

2. मानवजाति के अनुभव।

3. सभ्यता का प्रतिबिम्ब।

इस पाठ्यक्रम के मन या आत्मा के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, किन्तु शरीर की भौतिक आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

अथर्ववेद के मंत्र में उल्लेख है –

ब्रह्मचारी वेदविद्या, प्राणविद्या, लोकविद्या और ईश्वर स्वरूप का प्रकाश करके मोक्ष तथा भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति करनी चाहिए।

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापति परमेष्ठिनं विराजम्।

गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरास्तंतह।। [2]

इस प्रकार आदर्शवादी शैक्षिक पाठ्यक्रम में जीवन की भौतिक व शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा की गयी है।'

सामान्य रूपेण वैदिक शिक्षा पद्धति को आदर्शवादी विचारधारा के समकक्ष कहा जाता है। आदर्शवादी शैक्षिक विचारधारा एवं वैदिक शिक्षा के मूल तत्त्वों में कोई विशेष भेद नहीं हैं, भारतीय अध्यात्म के आचार्यों की गणना अतएव आदर्शवादियों में होती है। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द आदि अध्यात्म–पुरुषों के शिक्षा सिद्धांतों में आदर्शवादी विचारधारा को स्पष्ट ही अनुभव किया जा सकता है। आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र का निर्माण व नैतिमता का सृजन ही है।

उपरोक्त विचार औपनिषदी शिक्षा के स्वरूप को देखकर ही लिखे गये हैं। साध रणतः व्यक्ति वैदिक शिक्षा तथा उपनिषद् कालीन शिक्षा को ही एक ही समझते हैं, किंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है। उपनिषत्कालीन शिक्षण पद्धति में वैदिक विचारधाराओं का समावेश तो कहा जा सकता है, किंतु उसे वैदिक शिक्षा पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि वेद, देश काल की सीमाओं से परे हैं, और उपनिषद् कालबद्ध रचना। उपनिषद् काल में "ब्रह्म प्राप्ति" ही शिक्षा का लक्ष्य थी, किन्तु वैदिक शिक्षा–मनुष्य के सर्वाङ्गीण विकास की पोषिका है।

वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भौतिक/शारीरिक आवश्यकताओं का पूर्णरूपेण ध्यान रखा गया है। अथर्ववेदीय शैक्षिक पाठ्यक्रम में भौतिक, आध्यात्मिक विषयों का अच्छा समन्वय देखने को मिलता है।

आदर्शवादी शिक्षण सिद्धांतों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

आदर्शवादी सिद्धान्त को मानने वाले बालक को गौण और शिक्षक को मुख्य स्थान प्रदान करते हैं। आदर्शवाद जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है। रोटी, कपड़ा और मकान को कोई महत्त्व नहीं प्रदान किया गया है।

अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि – अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों में मानवीय आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया है। विज्ञान प्रौद्योगिकी की शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बताया गया है।

प्रकृतिवादी शिक्षा सिद्धान्त एवं अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त

प्रकृतिवादी विचारधारा में प्रकृति की निकटता एवं स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया गया है। प्रकृतिवाद आदर्शवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न विचारधारा है। प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है, और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं। प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।

प्रकृतिवादियों ने शिक्षा के निम्न मुख्य उद्देश्य कहे हैं –

1. जीवन संघर्ष के लिए तैयारी।
2. वातावरण अनूकूल से क्षमता।
3. आत्मसंरक्षण एवं आत्मसंतोष की प्राप्ति।
4. वैयक्तिकता का स्वतंत्र विकास।

शिक्षा के इन उद्देश्यों में वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं को विशेषरूप से वर्णित किया गया है। प्रकृतिवाद भौतिक जीवन को ही स्वीकार करता है, अध्यात्मिक जीवन के संबंध में सर्वथा मौन है।

अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों में 'जीवन संघर्ष की तैयारी' और वातावरण से अनुकूलन के प्रकृतिवादी सिद्धांतों की झलक स्पष्ट रूपेण देखी जा सकती है। अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों के अनुसार– शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से परिपुष्ट करना है।

प्रकृतिवादी कमेनियस ने पाठ्यक्रम में सभी आवश्यक विषयों के समावेश पर बल दिया है। कमेनियस का यह विचार अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त के अनुरूप ही प्रतीत होता है। वैदिक शिक्षा जीवन के लिए सभी आवश्यक विषयों को पढ़ाने का आग्रह करती है। महर्षि दयानन्द इस आवश्यक पाठ्यवस्तु को "न्यूनतम आवश्यक अध्ययनीय विषय" कहा है। किन्तु विषय विशेष की विशेषज्ञता तथा लक्ष्यानुसार विषय चुनाव की सुविधा भी प्रदान की गयी है।

प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में हरबर्ट के अनुयायियों ने इतिहास को केन्द्रीय विषय माना है, स्पेनसर ने विज्ञान केन्द्रित पाठ्यक्रम में बल दिया है।

पाठ्यक्रम में निम्न तत्त्वों के समावेश पर बल दिया गया है –

1.जीवन रक्षा संबंधी विषयों को प्रधानता।
2.छात्रों की रूचि, योग्यता और स्वाभाविक क्रियाओं का ध्यान रखा जाए।
3.विज्ञान को केन्द्रीय विषय बनाया जाए।
4.निम्न विषयों के सापेक्षिक महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है

शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास, गृहशास्त्र, अर्थ, कला, नीति भाषा और साहित्य संबंधी ज्ञान।

प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम अथर्ववेदीय पाठ्यक्रम से संबंध रखता है, किंतु इसमें परा विद्या अथवा अध्यात्म का सर्वथा अभाव है। प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम अथर्ववेदीय पाठ्यक्रम के प्रथम भाग (अपरा विद्या) का ही हिस्सा है, द्वितीय भाग को सर्वथा छोड़ दिया गया है।

प्रकृतिवादियों का शिक्षणविधियों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। खेल-पद्धति प्रयोग पद्धति, निरीक्षण पद्धति, यूरिरिष्टक माण्टेंसरी पद्धति, इत्यादि पद्धतियों का जनक प्रकृतिवादियों को माना जाता है, किंतु इन विधियों का संकेत अथर्ववेदीय शिक्षा में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में **"वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्"**[3] कहकर खेलविधि तथा अन्य रोचक विधियों से अध्यापन का आग्रह किया गया है।

मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण विधि में इन विधियों को बहुत महत्त्व प्रदान किया है। प्रकृतिवादी विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक रूसों (Rousseau) ने भी प्रयोगवादी शिक्षण विधियों का ही समर्थन किया है। रूसो ने 'करके सीखना' व 'अनुभव द्वारा सीखना' इत्यादि शिक्षण की सक्रिय व खोजपूर्ण विधियों को ही उचित ठहराया है। वे कहते हैं

'अपने छात्र को मौंखिक पाठ मत पढ़ाओं उसे केवल अनुभव से सीखने दो। जब भी संभव हो, आप कार्य द्वारा पढ़ायें और शब्दों का सहारा केवल तभी लें, जब कार्य करना संभव न हो।[4]'

प्रकृतिवाद का मूल्यांकन करते हुये डॉ. पाठक ने लिखा है प्रकृतिवाद तात्कालिक उपयोगिता पर बल देता है। शिक्षक की उपेक्षा करता है। अध्यात्मिक गुणों तथा चरित्र निर्माण की उपेक्षा करता है। प्रकृतिवाद बालक के वर्तमान जीवन से संबंध रखता है और उसके भावी जीवन से कोई सरोकार नहीं रखता है।

उपर्युक्त सन्दर्भ में अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धांतों के संबंध में कहा जा सकता है कि अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त तात्कालिक आवश्यकताओं के साथ-साथ भावी आवश्यकताओं पर भी स्पष्ट एवं उपयोगी विचार प्रस्तुत करते हैं। अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त अनेक मनोवैज्ञानिक शिक्षणविधियों का मूल है। अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त शिक्षार्थी के भावी जीवन की भी ठोस योजना प्रस्तुत करते हैं। अथर्ववेदीय मंत्र में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

प्रयोजनवादी शिक्षा सिद्धान्त एवं अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त

प्रयोजनवादी सिद्धान्त व्यावहारिकता तथा उपयोगिता पर आधारित हैं। जेम्स. बी. प्रैट ने प्रयोजनवादी सिद्धांतों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये लिखा है

Pragmatism offers us a theory of meaning a theory of truth a theroy of knowledge, and a theory of reality.

1. अथर्ववेदीय मंत्रों के अवलोकन से यह प्रमानीत होता है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनुगमन करने से मानवीय प्रयोजन स्वत: प्राप्त होते है। अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों में उपरोक्त विचारों को पूरा सम्मान दिया गया है।

2. उनका मानना है कि शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते हैं। उद्देश्य सिर्फ व्यक्तियों के होते है। व्यक्तियों के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। बालकों के सातह भी यही बात होती है। जैसे-जैसे उनका विकाश होता है, वैसे-वैसे उनके उद्देश्य बदलते हैं। प्रयोजनवादी डिवी शिक्षा के उद्देश्यों को स्वीकार नहीं करते।

प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त , सत्य का सिद्धान्त , ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुये चार्ल्स पियर्स (Charles Peirce) ने लिखा है-

'प्रयोजनवाद स्वयं में तत्त्वदर्शन का सिद्धान्त नहीं है, और न यह वस्तुओं के सत्य को निर्धारित करने के लिए और प्रयास है। यह केवल कठिन शब्दों और अमूर्त धारणाओं के अर्थ के निश्चित करने की विधि है।[5]'

अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों में उपरोक्त विचारों को पुरा सम्मान दिया गया है। अथर्ववेदीय मन्त्रों के अवलोकन से यह प्रमाणित होता है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनुगमन करने से मानवीय प्रयोजन स्वत: प्राप्त होते हैं।

प्रयोजनवादी डिवी शिक्षा के उद्देश्यों को स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते हैं। बालकों के साथ भी यही होती है। जैसे जैसे उनका विकास होता है, वैसे वैसे उनके उद्देश्य बदलते हैं। डिवी के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों की निम्न तीन विशेषताएं होती हैं

1. ये छात्रों को सहयोग प्रदान करते है।
2. छात्रों की क्रियाओं व आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं।
3. ये विशिष्ट व तात्कालिक होते हैं।

प्रयोजनवादी शिक्षण विधि के कुछ मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं

1. उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया का सिद्धान्त ।
2.अनुभव द्वारा सीखने का सिद्धान्त ।
3.एकीकरण का सिद्धान्त ।

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम के लिए रूचि एवं उपयोगिता पर बल देते हैं, अथर्ववेदीय शिक्षण सिद्धान्त भी शिक्षा व पाठ्यक्रम की उपयोगिता पर विशेष बल देते हैं। अथर्ववेदीय के 11/5/14, 11/5/18, 18/2/7 इत्यादि मंत्रों में पाठ्यक्रम की उपयोगिता पर संकेत मिलता है।

प्रयोजनवादी 'क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम' (Activity Curriculum) का समर्थन करते हैं। अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त में ज्ञान के पश्चात् खोजपूर्ण प्रायोगिक क्रियाओं का वर्णन मिलता है।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोता:।

प्राणापानौ जनयन्नाद्त्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्।। [6]

प्रयोजनवाद में यद्यपि अध्यात्म को अस्वीकार नहीं किया गया है, पुनरपि अध्यात्म का मानवीय जीवन में महत्त्व अस्पष्ट है।

अथर्ववेद में प्राप्त शिक्षा की प्रायोगिक विचारधारा से आधुनिक प्रयोगवाद की तुलना की जा सकती है। अथर्ववेद में प्रयोगवाद को महत्त्व दिया गया है–

इहैवाभि तनू ते आत्नी इव ज्यया। [7]

यथार्थवादी शिक्षा सिद्धान्त एवं अथर्ववेदी शिक्षा सिद्धान्त

स्वामी रामतीर्थ ने यथार्थवाद के सम्बन्ध में लिखा है

Realism means a belief or theory which works upon the world as it seems to us –

यथार्थवाद का अर्थ वह विश्वास या सिद्धान्त है, जो जगत् को वैसा ही स्वीकार करता है, जैसा कि हमें दिखाई देता है। यथार्थवादियों ने इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति का सच्चा साधन माना है। अथर्ववेद में भी इसी तरह का वर्णन उपलब्ध होता है। एक यंत्र में सात इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त कर शरीर की रक्षा करने का उपदेश दिया गया है –

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।

तदासत ऋषयः सप्त सामं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।। [8]

अर्थात् दो कान, दो नेत्र, दो नथने और एक भुज इन सातों के द्वारा प्राणी ज्ञान प्राप्त करके शरीर की रक्षा करता है। – वेद भाष्य

मानवतावादी यथार्थवाद के समर्थक, जान मिल्टन ने उदार शिक्षा पर बल दिया है। उदार शिक्षा की परिभाषा देते हुए वे लिखतें हैं –

मैं उस शिक्षा को पूर्ण एवं अधर शिक्षा कहता हूँ, जो एक व्यक्ति को न्यायोचित ढंग से, कुशलता पूर्वक तथा उदारता के साथ निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के सभी कार्यों को शांति तथा युद्ध के समय पूर्ण करने के योग्य बनाती है।

यथार्थवादी व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल देते हैं। व्यवसाय शिक्षा को समान महत्त्व प्रदान किया गया है–

No individual shall be obliged without a vocation and a vocation without an education." – Devenport – Principles of Education, p–409

पाठ्यक्रम में उपयोगिता को आधार बताते हुये – कृषि, भौतिक शास्त्र, शिल्प कला, भूगोल, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, गणित, राजनीति, इतिहास, नीतिशास्त्र तथा काव्य आदि को समाहित करने का निर्देश दिया गया है। इस पाठ्यक्रम की तुलना उपनिषद् वर्णित वैदिक शिक्षा के अपरा पाठ्यक्रम से की जा सकती है।

अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त

माध्यमिक शिक्षा आयोग के परिप्रेक्ष्य में स्वतन्त्रता–प्राप्ति के उपरांत भारत में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र विकास हुआ। अनेक माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण हुआ तथा उसमें पढ़ने वाले छात्रों की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई।

स्वतंत्र भारत की तात्कालिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हो रहा था, परिस्थितियों के अनुरूप माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

इसी उद्देश्य से माध्यमिक शिक्षा आयोग की सन् 1952 में नियुक्ति में नियुक्ति की गयी।

आयोग ने तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा के निम्न दोष दर्शाये थे-

1. माध्यमिक शिक्षा का जीवन से संबंध नहीं है।
2. इससे व्यावहारिक जगत का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।
3. अध्यापन में मनोवैज्ञानिक विधियों का अभाव है।
4. छात्रों की रूचि के अनुकूल नहीं है।
5. छात्रों में विचार की स्वतंत्रता तथा क्रिया रूचि के उत्पादन में असमर्थ है।
6. कक्षाओं में छात्रों की संख्या अधिक है छात्र व अध्यापक का व्यक्तिगत संपर्क नहीं बन पाता।
7. चरित्र निर्माणकारी शिक्षा का अभाव अतः अनुशासन की समस्या बढ़ रही है।

इन दोषों को आयोग ने दूर करने की योजना भी प्रस्तुत की है।

माध्यमिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं :-

(1) लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास

(2) व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि

(3) व्यक्तित्व का विकास

(4) नेतृत्व का विकास

इस सन्दर्भ से यदि हम अथर्ववेदीय शिक्षण सिद्धान्तों का परीक्षण करें तो अथर्ववेदीय शिक्षण सिद्धान्त आयोगी की सिफारिशों के अनुरूप प्रतीत होती है।

अथर्ववेदीय शिक्षा का जीवन से पूर्ण संबंध था। शिक्षा व जीवन के संबंधों का दिग्दर्शन करता हुआ वेद शिक्षित व्यक्ति को परोपकारी समाज हित में तत्पर कहता है। शिक्षित व्यक्तियों के लिए मर्यादाएं बनायी गयी थीं कि वे विद्या से सुभूषित होकर परोपकार करें -

क्रतुना विभासि सर्वाल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः। [9]

मन्त्रों विद्या द्वारा संसारिक कर्तव्यों का ज्ञान कहा गया है।

अथर्ववेद के मन्त्र- **येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि।** (अथर्व-18। 4। 68)में ज्ञानी को सर्वहितकारी कहा गया है।

अथर्ववेदी शिक्षा का जीवन से साक्षात् संबंध हैं। अथर्ववेद जीवन के सभी उपयोगी व आवश्यक पक्षों को ज्ञान नाम्ना संगृहीत कर दिया गया है।

व्यावहारिक जगत् से संबंध बनाने नीतिवादी व्यावहारिक शिक्षाओं का उल्लेख अथर्ववेद में यत्र–तत्र बहुधा देखने को मिलता है। अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड में स्त्री–पुरूषों (पति–पत्नी) के व्यवहारों तथा कर्तव्यों पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

अध्यापन की मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का अथर्ववेद ने विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

छात्रों की विचार स्वतन्त्रता तथा क्रियाशीलता का भी अथर्ववेद में वर्णन है।

अथर्ववेदी शिक्षा चरित्र निर्माण व अनुशासन की परिपोषिका है। अथर्ववेद में अनेक अनुशासन का महत्त्व दर्शाया गया है।

चरित्र की श्रेष्ठता की साधना अथर्ववेदीय मन्त्रों में चरित्र की श्रेष्ठता की साधना पग–पग पर देखने को मिलती है। चरित्र / आदर्श जीवन निर्माण अथर्ववेदीय शिक्षा का महत्त्वपूर्ण विषय है –

दिंति शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक।[10]

इस मन्त्र में अवगुणत्याग एवं गुण ग्रहण करके चरित्र निर्माण के लिए प्रेरित किया गया है। अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त तथा चतुदर्श काण्ड के बहुत से मन्त्रों में चरित्र निर्माण का वर्णन है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा के उद्देश्यों में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना व्यावसायिक प्रशिक्षण, व्यक्तित्व विकास, तथा नेतृत्व क्षमता के विकास को प्रथम रखा है।

अथर्ववेदीय शिक्षा में इन शैक्षिक उद्देश्यों का पूरा–पूरा समन्वय हमें देखने को मिलता है। अथर्ववेद में ब्रह्मचारी रूपी शिक्षक को सर्वशिक्षक तथा अनुशासन कहा गया है। सभी श्रेष्ठ पुरूषों से ब्रह्मचारी के अनुशासन को मानने का आग्रह किया गया है।

लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना करते हुए कहा गया है–

'ब्रह्मचारी उच्च पदों को प्राप्त कर प्रजा को प्रसन्न रखे...। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी पुरूष विद्वानों में मेल रखें। अपने गुणों से सब का हित करें।

इस प्रकार हम देखते हैं। कि अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्ण सक्षम है। अथर्ववेदीय शिक्षा पूर्ण व्यावहारिक एवं उपयोगी है, इसमें शिक्षा की आधुनिक आवश्यकताओं का पूरा–पूरा ध्यान रखा गया है।

अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त और उच्च शिक्षा आयोग-

आयोग ने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विश्वविद्यालयीन शिक्षा का मूल्यांकन करते हुये विश्वविद्यालयीन शिक्षा के निम्न मुख्य उद्देश्य बताये हैं–

1. ऐसे व्यक्तियों का निर्माण में व्यावसायिक राजनीतिक एवं प्रशासकीय क्षेत्र में नेतृत्व भी करें।
2. विश्वविद्यालयों को समाज सुधार में योग देना चाहिए।
3. छात्रों का आध्यात्मिक विकास करना

4. स्वस्थ मस्तिष्क तथा स्वस्थ शरीर के निर्माण व विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।

5. शिक्षा द्वारा न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बंधुता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

6. भारतीय संस्कृति सभ्यता के मूल्यों को आत्मसात् करना आदि।

उपर्युक्त मानदण्डों अथवा शैक्षिक उद्देश्यों में अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों की तुलना करें तो पता चलता है कि –अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्त में उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश है।

अथर्ववेद के अनुसार– जो व्यक्ति व्यवहार और विद्या में कुशल होता है, वह राज्य की सब प्रकार से वृद्धि करता है। इस मन्त्र में राजनीति, लोकतान्त्रिक मूल्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है।

अथर्ववेद 14/2/69 में शारीरिक स्वास्थ्य की शिक्षा दी गयी है। ग्यारहवें एवं चौदहवें काण्ड में शिक्षा द्वारा स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मस्तिष्क के विकास का आग्रह किया गया है। [11]

आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था के भी निर्देश दिये हैं। अथर्ववेदीय मन्त्रों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेदीय व्यावसायिक शिक्षा तथा आयोग की व्यवसायिक शिक्षा में समानता है।

अथर्ववेदीय शिक्षण सिद्धान्त एवं शिक्षा आयोग

शिक्षा आयोग ने भारतीय शिक्षा की विस्तृत विवेचना करते हुए–शिक्षा के स्तर, संगठन, अवसरों की समानता इत्यादि अनेक विषयों पर विचार प्रस्तुत किये हैं आयोग ने प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता देश के आधुनिकीकरण, सामाजिक मूल्यों का विकास, राष्ट्रीय एकता एवं नैतिक विकास को शिक्षा का उद्देश्य माना है।

अथर्ववेदीय शैक्षिक उद्देश्यों ने भी इन्हीं उपर्युक्त गुणों के विकास को शिक्षा का उद्देश्य माना गया है। इन्हीं उद्देश्यों को अन्य आयोगों ने भी शिक्षा का उद्देश्य माना है। शिक्षा द्वारा समाज की उन्नति अथवा आधुनिकीकरण का अथर्ववेद में वर्णन निम्न प्रकार आया है–

ब्रह्मचारी ब्रह्चर्य के साथ पृथ्वी, सूर्य और अन्तरिक्ष विद्या को जानकर संसार का उपकार करेगा।

ब्रह्मचारी धर्म एवं सम्पत्ति का मार्ग दिखाकर आनन्द पहुँचाता है।

आचार्य और ब्रह्मचारी विद्या प्राप्त करके संसार के पृथिवी, सूर्य आदि सब पदार्थों का तत्त्व जानकर उन्हें उपयोगी बनाते हैं।

अथर्ववेदीय शिक्षा में नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास, प्रजातान्त्रिक मूल्य एवं सामाजिक उन्नति के बहुविध संकेतों का पूर्ण ही प्रदर्शन किया जा चुका है। राष्ट्रीय एकता के लिए–ब्रहचर्येण तपसा राज राष्ट्र विरक्षति इत्यादि मन्त्र द्रष्टव्य है। इस सम्बन्ध में महर्षि मनु का यह उद्घोष प्रसिद्ध है –

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा:। [12]

इस प्रकार अथर्ववेदीय शिक्षा शिक्षा आयोग द्वारा निर्धारित उद्देश्यों का पूर्णरूपेण पालन करती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अथर्ववेदीय शिक्षा

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में अथर्ववेदीय शिक्षा सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। अथर्ववेदीय शिक्षा ही मानवीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकती है। अथर्ववेदीय शिक्षा-बेरोजगारी, व्यवसाय, जनसंख्या, व्याधि, अनैतिकता, इत्यादि सभी समस्याओं का समाधान करके मानव को सुख शांति एवं समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर आसीन कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ : -

1. शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, डॉ. पाठक, पृ.- 525
2. अथर्व. 11/5/7
3. अथर्व. 11/5/2
4. शि. सि. पृ. 310
5. शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त , पृ. 315 (डॉ. पाठक)
6. अथर्व. 11/5/24
7. अथर्व. 1/1/3
8. अथर्व. 10/8/9
9. **अथर्व. 13/2/10**
10. अथर्व0 11 / 3 / 4
11. अड्.गादङ्गात् वयमस्या अप यक्ष्म नि दध्मणि।
12. मनुस्मृति